**ओ३म्**

**--नासदीय-सूक्त का अध्ययन--**

**‘वेदों के नासदीय-सूक्त में सिद्धान्त रूप में सृष्टि की प्रलय व उत्पत्ति का वर्णन है’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

 ऋग्वेद के मण्डल 10 सूक्त 129 को नासदीय-सूक्त कहते हैं। इस सूक्त में सृष्टि की उत्पत्ति होने से पूर्व आकाश की अन्धकाररूप स्थिति का वर्णन है। परमात्मा के सम्मुख सृष्टि का उपादान कारण द्रव्यभाव से वर्तमान था, आत्माएं भी साधारण और मुक्त अवस्था की बहुत थीं आदि ऐसे अनेक विषयों का वर्णन इस सूक्त में है। नासदीय का अर्थ है कि सृष्टि की रचना से पूर्व जगत् की स्थिति शून्यमय नितान्त अभावरूप नहीं थी, कुछ अवश्य था परन्तु जो था वह अप्रकट व प्रकाशित था। सृष्टि की इस कारण रूप अवस्था का दिग्दर्शन कराने के लिए इस संसार के स्वामी परमेश्वर ने अपनी अनादि व नित्य प्रजा जीवात्माओं-मनुष्यों को इस सूक्त में यथार्थ ज्ञान दिया है। सूक्त में कुल 7 मन्त्र हैं जिन्हें हम स्वाध्यायार्थ एवं ज्ञानार्थ प्रस्तुत कर रहे हैं। सृष्टि की प्रलय अवस्था का इन मन्त्रों में जैसा वर्णन है वैसा किसी अन्य धार्मिक व विज्ञान के ग्रन्थ में उपलब्ध नहीं होता। इसलिए नहीं हो सकता क्योंकि प्रलय अवस्था का एकमात्र साक्षी तो केवल और केवल परमात्मा ही होता है। वह ही जो कहेगा या बतायेगा, वही सत्य व स्वीकार्य होगा। उसने इसका वर्णन ऋग्वेद में किया है, जो विचारणीय है। हमें लगता है कि इस वर्णन से वेदों के ईश्वरीय ज्ञान होने की पुष्टि भी होती है। आईये, पहले सातों मन्त्रों पर दृष्टि डालते हैं।

**ओ३म् नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्। किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम्।।1।।**

**न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अन्ह आसीत्प्रकेतः। आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास।।2।।**

**तम आसीत्तमसा गूळहमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्। तुच्छय्येनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिनाजायतैकम्।।3।।**

**कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्। सतो बन्धुमसति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा।।4।।**

**तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासी३दुपरि स्विदासी३त्। रेतोधा आसन्महिमान आसन्त्स्वधा अवस्तात्प्रयतिः परस्तात्।।5।।**

**को अद्धा वेद क इह प्रवोचत्कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः। अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आबभूव।।6।।**

**इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न। यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अंग वेद यदि वा न वेद।।7।।**

 ऋग्वेद के सम्पूर्ण दसवें मण्डल पर स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक जी द्वारा किया गया संस्कृत-हिन्दी पद-अर्थ व भावार्थ उपलब्ध है। महर्षि दयानन्द ऋग्वेद का पूरा भाष्य नहीं सके जिसमे दसवें मण्डल का भाष्य भी सम्मिलित है। वह ऋग्वेद के मण्डल 8 सूक्त 61 के दूसरे मन्त्र तक का ही भाष्य कर सके। यहां तक भाष्य करने के बाद ही उन्हें कालकूट विष दे दिया गया जिससे उनकी मृत्यु हो गई थी। उन्होंने **ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका** में **सृष्टिविद्याविषय अध्याय** में सप्तम् व तृतीय मन्त्र का क्रम से अर्थ प्रस्तुत किया है। उन्होंने लिखा था कि वह सूक्त के 2 से 6 तक मन्त्रों का भाष्य वेदभाष्य में करेंगे जिसे वह आरम्भ करने वाले थे। परन्तु बीच में ही कुछ स्वार्थी व अधर्मी लोगों ने विषपान कराकर व उनकी समुचित चिकित्सा न होने से उनका प्राणान्त हो गया। महाभारत युद्ध से जो आर्यों का अभाग्योदय हुआ था उसकी महर्षि दयानन्द को विष दिये जाने और उससे मृत्यु हो जाने से एक बार पुनः पुनरावृत्ति हुई। सत्यार्थप्रकाश भी महर्षि दयानन्द का सर्वप्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसके अष्टम् समुल्लास में भी स्वामी जी नासदीय-सूक्त के मन्त्र 3 व 7 का भावानुवाद दिया है। महर्षि के इन भावार्थों को हम ब्रह्ममुनि जी के सभी मन्त्रों के भावार्थों के पश्चात प्रस्तुत कर रहे हैं। स्वामी ब्रह्मुनि जी के दसवें मण्डल से उपर्युक्त सातों मन्त्रों के भावार्थ प्रस्तुत हैं:

 **सृष्टि से पूर्व न शून्यमात्र अत्यन्त अभाव था परन्तु वह जो था उसका प्रकटरूप भी न था, न रंजनात्मक कणमय गगन था न परवर्ती सीमावर्ती आवर्त्त घेरा था। जब आवरणीय पदार्थ या जगत् न था तो आवर्त्त भी क्या हो वह भी न था। कहां फिर सुख शरण किसके लिये हो एवं भोग्य भोक्ता की वर्तमानता भी न थी, सूक्ष्म जल परमाणु प्रवाह या परमाणु समुद्र भी न था, कहने योग्य कुछ न था पर था कुछ, अप्रकटरूप में था।।1।।**

 **सृष्टि से पूर्व मृत्यु नहीं था क्योंकि मरने योग्य कोई था नहीं, तो मृत्यु कैसे हो? मृत्यु के अभाव में अमृत हो सो अमृत भी नहीं क्योंकि मृत्यु की अपेक्षा से अमृत की कल्पना होती है। अतः अमृत के होने की कल्पना भी नहीं, दिन रात्रि का पूर्व रूप भी न था क्योंकि सृष्टि होने पर दिन रात्रि का व्यवहार होता है, हां एक तत्व वायु द्वारा जीवन लेनेवाला नहीं किन्तु स्व घारणशक्ति से स्व सत्तारूप जीवन धारण करता हुआ जीता जागता ब्रह्म था उससे अतिरिक्त और कुछ न था।।2।।**

 **सृष्टि से पूर्व अन्धकार से आच्छादित अन्धकारमय था, जल समान अवयवरहित न जानने योग्य “आभु” नाम से परमात्मा के सम्मुख तुच्छ रूप में एकदेशी अव्यक्त प्रकृति रूप उपादान कारण था जिससे सृष्टि आविर्भूत होती है, उस (ईश्वर) के ज्ञानमय तप से प्रथम महत्तत्व उत्पन्न हुआ।।3।। (यह महत्तत्व पदार्थ उपादान कारण रूप प्रकृति का पहला विकार है जो ईश्वर की प्रेरणा रूपी ईक्षण क्रिया से हुआ व बना-लेखक)।**

 **आरम्भ सृष्टि में भोगों के लिए कामभाव वर्तमान होता है जो मानव की बीज शक्तिरूप में प्रकट होता है, क्रान्तदर्शी विद्वान आत्मा के अन्दर शरीर का बांधने वाला है उसे समझ कर वैराग्य को प्राप्त होते हैं।।4।।**

 **भोगों की कामनारूप मानवबीजशक्ति को धारण करने वाले आत्मा सृष्टि से पहले थे और वे असंख्यात थे। इनके पूर्व कर्म कृत संस्कार डोरी या लगाम के समान शरीर में खींच कर लाता है व निकृष्टयोनि संबन्धीं और उत्कृष्टयोनि संबन्धी होता है। शरीर के अवर भाग में जन्म है और परभाग में प्रयाण मृत्यु है।।5।।**

 **यह विविध सृष्टि किस निमित्त कारण से और किस उपादान कारण से उत्पन्न होती है इस बात को कोई विरला विद्वान ही यथार्थ रूप में जान सकता है क्योंकि सभी विद्वान सृष्टि उत्पन्न होने के पश्चात् होते हैं--अर्थात् कोई तत्ववेत्ता योगी ही उसको समझ सकता है और कह सकता है।।6।।**

 **यह विविध सृष्टि जिस उपादान कारण से उत्पन्न होती है उस उपादान कारण अव्यक्त प्रकृति का यह परमात्मा स्वामी--अध्यक्ष है, वह उससे सृष्टि को उत्पन्न करता है और उसका संहार भी करता है, प्रकृति को जब लक्ष्य करता है तो उसे सृष्टि के रूप में ले आता है, नहीं लक्ष्य करता है तो प्रलय बनी रहती है, इस प्रकार सृष्टि और प्रलय परमात्मा के अधीन है।।7।।**

**महर्षि दयानन्द जी का ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में मन्त्र संख्या 1 व 7 का भाष्यः**

 ***जब यह कार्य सृष्टि उत्पन्न नहीं हुई थी, तब एक सर्वशक्तिमान् परमेश्वर और दूसरा जगत् का कारण अर्थात् जगत् बनाने की सामग्री विराजमान थी। उस समय असत् वा शून्य नाम आकाश अर्थात् जो नेत्रों से देखने में नहीं आता, सो भी नहीं था क्योंकि उस समय उसका व्यवहार नहीं था। उस काल में सत् अर्थात् सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण मिला के जो प्रधान कहलाता है, वह भी नहीं था। उस समय परमाणु भी नहीं थे तथा विराट् अर्थात् जो सब स्थूल जगत् के निवास का स्थान है सो भी नहीं था। जो यह वर्तमान जगत् है, वह भी अनन्त शुद्ध ब्रह्म को नहीं ढाक सकता, और उससे अधिक वा अथाह भी नहीं हो सकता और न वह कभी गहरा वा उथला हो सकता है। इससे क्या जाना जाता है कि परमेश्वर अनन्त है और जो यह उसका बनाया जगत् है, सो ईश्वर की अपेक्षा से कुछी भी नहीं है।।1।।***

 ***जब जगत् नहीं था, तब मृत्यु भी नहीं था, क्योंकि जब स्थूल जगत् संयोग से उत्पन्न होके वर्तमान हो, पुनः उसका और शरीर आदि का वियोग हो तब मृत्यु कहावे सो शरीर आदि पदार्थ उत्पन्न ही नहीं हुए थे। इसके आगे महर्षि दयानन्द लिखते हैं कि ‘न मृत्यु.’ इत्यादि पांच मन्त्र सुगमार्थ हैं, इसलिये इनकी व्याख्या भी यहां नहीं करते, किन्तु वेदभाष्य में करेंगे। (2-6)***

 ***जिस परमेश्वर के रचने से जो यह नाना प्रकार का जगत् उत्पन्न हुआ है, वही इस जगत् को धारण करता, नाश करता और मालिक भी है। हे मित्र लोगों ! जो मनुष्य उस परमेश्वर को अपनी बुद्धि से जानता है, वही परमेश्वर को प्राप्त होता है और जो उसको नहीं जानता वही दुःख में पड़ता है। जो आकाश के समान व्यापक है, उसी ईश्वर में सब जगत् निवास करता है। और जब प्रलय होता है, तब भी सब जगत् कारण रूप होके ईश्वर के सामथ्र्य में रहता है, और फिर उसी से ही उत्पन्न होता है।।7।।***

**सत्यार्थप्रकाश में मन्त्र 7 व 3 का भावार्थः**

 ***हे मनुष्यों ! जिस से यह विविध सृष्टि प्रकाशित हुई है, जो धारण और प्रलय कत्र्ता है, जो इस जगत् का स्वामी, जिस व्यापक में यह सब जगत् उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय को प्राप्त होता है, सो परमात्मा है, उस को तू जान और दूसरे को सृष्टिकर्त्ता मत मान।।7।। यह सब जगत सृष्टि के पहिले अन्धकार से आवृत्त रात्रिरूप में जानने के अयोग्य, आकाशरूप सब जगत् तथा तुच्छ अर्थात् अनन्त परमेश्वर के सम्मुख एकदेशी, आच्छादित था। पश्चात् परमेश्वर ने अपने सामर्थ्य से, कारणरूप से कार्यरूप कर दिया II 3II***

 इस सूक्त में प्रलयावस्था के वर्णन के साथ सृष्टि की उत्पत्ति का उपादान कारण प्रकृति व निमित्त कारण ईश्वर को बताया गया है। ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ है। उसने इस सृष्टि से पूर्व भी असंख्य बार सृष्टि को उत्पन्न व उत्पन्न सृष्टि की प्रलय की है। इसका उसे अनादि काल से ज्ञान व अनुभव है। सृष्टि का प्रयोजन भी वेदों ने असंख्यात जीवों के पूर्व किये हुए कर्मों के भोग प्रदान करने को बताया है। सृष्टि की प्रलय व ईश्वर द्वारा इसकी उत्पत्ति होना सत्य व यथार्थ सिद्धान्त है। यह पूर्णतया वैज्ञानिक है, भले हि वैज्ञानिक इसे किसी कारण से स्वीकार करें या न करें। यह निश्चित है कि सृष्टि की रचना स्वयं नहीं हो सकती और न हि प्रलय भी स्वयं हो सकती है। जीव व प्रकृति जड़ तत्वों से निर्मित होकर नहीं बने हैं अपितु यह दोनों अनादि, नित्य, अजन्मा व अमर हैं और ऐसा ही ईश्वर भी सच्चिदानन्द, अनादि, अजन्मा, नित्य, अमर, सर्वव्यापक, निराकार, सर्वज्ञ व सर्वशक्तिमान आदि गुणों से पूर्ण है। वेदों के इन्हीं सिद्धान्तों का परवर्ती ब्राह्मण ग्रन्थों, दर्शन व उपनिषद साहित्य आदि में समर्थन व विस्तार हुआ है। हम आशा करते हैं कि इस लेख के द्वारा पाठक सृष्टि की रचना व प्रलय अवस्था से सम्बन्धित वैदिक मन्तव्यों से परिचित होंगे व इसे वैज्ञानिक, सत्य, यथार्थ, तकपूर्ण व बुद्धिसंगत पायेंगे। वेदों में अन्य़त्र भी सृष्टि रचना के वर्णन प्राप्त होते हैं अतः वेदों का समग्र अध्ययन, चिन्तन व मनन सभी जिज्ञासुओं व अध्येताओं को करना चाहिये। यही अर्थात् वेदों का अध्ययन सभी मनुष्यों का पहला व अन्तिम धर्म व कर्तव्य भी है। वेदों का अध्ययन-अध्यापन, श्रवण-मनन व प्रचार न करने वाला मनुष्य वस्तुतः नास्तिक होता है। उसे हम एक प्रकार से कृतघ्न भी इस आधार पर कह सकते हैं जिस जगदीश्वर ने हम जीवों को मनुष्य रूपी शरीर दिया व सुख सुविधाओं के नाना साधन प्रदान किये है उसके ज्ञान वेदों का अध्ययन कर उसको व स्वयं को सत्य व यथार्थ रूप में न जानना कृतघ्नता व नास्तिकता ही है।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**